|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 15: पुरुषोत्तमयोग

2/2 (श्लोक 8-20), शनिवार, 30 मार्च 2024

विवेचक: गीता विशारद डॉ. संजय जी मालपाणी

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/WnLqVQ3lkIc

यत्र तत्र सर्वत्र मैं ही हूँ

सनातन परम्परानुसार दीप प्रज्वलन, प्रभु वन्दन तथा गुरु वन्दना के पश्चात् विवेचन सत्र आरम्भ हुआ। पिछले सप्ताह हमने श्रीमद्भगवद्गीता के पन्द्रहवें अध्याय के प्रथम सात श्लोकों का विवेचन किया। इन श्लोकों में श्रीभगवानजी ने संसार रूपी पीपल के वृक्ष की संरचना और इसे काटने के उपाय के बारे में चर्चा करते हुए स्वयं अपना पता बताया कि वह कहाँ रहते हैं, वे आगे कहते हैं-

15.8

शरीरं(यँ) यदवाप्नोति, यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति, वायुर्गन्धानिवाशयात्॥15.8॥

जैसे वायु गन्ध के स्थान से गन्ध को (ग्रहण करके ले जाती है), ऐसे ही शरीरादि का स्वामी बना हुआ जीवात्मा भी जिस शरीर को छोड़ता है, (वहाँ से) इन (मन सहित इन्द्रियों) को ग्रहण करके फिर जिस (शरीर) को प्राप्त होता है, (उसमें) चला जाता है।

विवेचन- संस्कृत बहुत सरल भाषा है। इसमें सन्धि विग्रह कर आप शब्दों का अर्थ जान सकते हैं। अभी तो आप पहले स्तर में इसका अध्ययन कर रहे हैं। जैसे-जैसे आप इसमें आगे बढ़ेंगे तो इन सन्धियों का विच्छेद कर इसके अर्थ को भली-भाँति जान पाएँगे। इस श्लोक में प्रयुक्त शब्दों से हम अच्छी तरह से परिचित हैं। वायु का अर्थ हवा होता है। गन्ध का अर्थ सुगन्ध या दुर्गन्ध होता है।

जब वायु प्रवाहित होती है तो अपने संसर्ग में आने वाली गन्धों को भी अपने साथ मिश्रित कर प्रवाहित करने लगती है। जैसे कोई सुगन्धित पुष्प खिला है तो प्रवाहित होने वाली वायु उसकी गन्ध को चारों ओर फैला देती है। अपने आप ही सारा वातावरण उस वायु के साथ सुगन्धित हो जाता है। यदि वायु किसी कारखाने की दुर्गन्ध को लेकर प्रवाहित होती है तो उसकी दुर्गन्ध समूचे वातावरण को दूषित कर देती है। इसी तरह जब कोई देह त्यागता है तो उस शरीर का स्वामी अर्थात उसकी आत्मा भी, आत्मा और मन के साथ जुड़ी पाँचों ग्रन्थियों के गुण और दुर्गणों को अपने साथ लेकर चलती है। किसके साथ सुगन्ध जानी है? किसके साथ दुर्गन्ध? यह सब आपके कर्मों पर निर्भर करता है। मृत्यु पर्यन्त मन आपकी पञ्चेन्द्रियों द्वारा किए गए अच्छे या बुरे कर्मों का, जिसका कि वह अभ्यस्त हो गया है, उन्हें दूसरे शरीर में, जिसमें आत्मा प्रविष्ट करती है, साथ लेकर जाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता बडा अद्भुत शास्त्र है। हमने जीवन भर जिस रस का रसास्वादन किया है, उसी के अनुरूप हमारे गुण-दोष हमारी जीवात्मा द्वारा ग्रहण किए जाते हैं। किसी को चुगली करने में रस आता है। किसी को प्रभु स्मरण करने में आनन्द आता है। अत्यधिक मजे की बात है, श्रीमद्भगवद्गीता में यह बात अत्यधिक स्पष्ट रूप से बताई है कि जिस तरह से कपड़े पुराने होने पर हम उन्हें बदल देते हैं, उसी तरह हमारी आत्मा भी हमारे शरीर को जीर्ण अर्थात पुराना होने पर छोड़ देती है। जैसे आप अपना कोई आभूषण लेकर सुनार के पास जाकर कहते हैं कि पुराने जमाने का हो गया है। सुनार उसे पिघलाकर प्रचलित फैशन के अनुरूप ढाल देता है। सुनार उसकी अशुद्धियों का आकलन करता है कि इसमें कितने प्रतिशत अशुद्धियाँ मिश्रित हैं। एकदम शुद्ध स्वर्ण को आभूषण में ढालना लगभग असम्भव होता है। उसमें अशुद्धियाँ मिलानी ही पड़ती हैं। इसी तरह हमारे शरीर का निर्माण भी हमारे मन और पञ्चेन्द्रियों के गुण-दोषों को मिलाकर ही बनता है इसलिए जब कोई देह त्यागता है और नई देह घारण करता है तो उसमें पूर्व देह के गुण-दोष भी प्रविष्ट जाते हैं।

15.9

श्रोत्रं(ञ्) चक्षुः(स्) स्पर्शनं(ञ्) च, रसनं(ङ्) घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं(वँ), विषयानुपसेवते॥15.9॥

यह (जीवात्मा) मन का आश्रय लेकर ही श्रोत्र और नेत्र तथा त्वचा, रसना और घ्राण –(इन पाँचों इन्द्रियों के द्वारा) विषयों का सेवन करता है।

विवेचन- श्रीभगवान जी आगे सरल शब्दों में इसे समझाते हैं।

श्रोत्रं- अर्थात सुनने का अङ्ग कान। आपने श्रोता शब्द तो सुना ही होगा। श्रोता का अर्थ होता है सुनने वाला और श्रोत्र का अर्थ सुनने वाला अङ्ग अर्थात कान।

चक्षु- इसका अर्थ आँख होता है।

त्वचा- स्पर्श करने वाली इन्द्री, हमारी त्वचा होती है।

रसना-रस लेने वाली इन्द्री हमारी जीभ होती है।

घ्राण- इसका अर्थ नासिका होता है। इस नासिका के दो छिद्र होते हैं दाहिनी और बायीं नासिका से श्वास का प्रवेश और निर्गम होता है। दाहिने नासिका छिद्र को सूर्य नाड़ी तथा बायें नासिका छिद्र को चन्द्र नाड़ी कहा जाता है।

मन-हमारी सारी इन्द्रियों का अधिष्ठाता इनका स्वामी मन होता है जो इन पञ्चेन्द्रियों को चलाता है।

हमारे शरीर में विद्यमान जीवात्मा मन का आश्रय लेकर सारी इन्द्रियों के कर्मों को भोगता है। हमारे बीच एक गलत धारणा है कि जो भी अच्छा-बुरा कर रहा है, वह परमात्मा कर रहा है। वास्तविकता यह है कि जो भी कुछ कर रहे हैं वह हम स्वयं कर रहे हैं। प्रकृति ने हमें जो बुद्धि दी है, जो विवेक दिया है, उसका उपयोग कर हमें स्वयं तय करना है कि क्या करना है?

मानव जीवन एक चौराहा है, जहाँ हमें स्वयं तय करना है कि हम इस रास्ते जाएँ? या उस रास्ते जाएँ? यह मानव ही है जिसे यह अधिकार, यह विवेक मिला है। पशुओं को यह निर्धारित करने का अधिकार नहीं है।

उत्तरकाण्ड में कहा गया है-

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥ 4॥

यह हमारा सौभाग्य है कि हमें मानव जीवन प्राप्त हुआ है। यह हमारे हाथ में है कि हम क्या करें? सही रास्ते पर जाएँ या गलत रास्ते पर? यह हमारी बुद्धि तय करेगी, न कि भगवान। हमारे अन्दर भगवान के अंश के स्वरूप जो आत्मा है, वह मन और प्रकृति के आश्रय से वहाँ स्थापित है लेकिन उसकी मर्जी नहीं चलती। वह मन और इन्द्रियों के कर्मो पर आश्रित है।

यह ठीक वैसा ही है जैसे कि एक वाहन है, जिसके मालिक एक सेठजी हैं। सेठजी को वाहन चलाना नहीं आता। इस कार्य के लिए उन्होने एक चालक नियुक्त कर रखा है। वाहन के स्वामी होकर भी सेठजी का वाहन सञ्चालन पर कोई नियन्त्रण नहीं है। कहीं आने-जाने के लिए वह वाहन चालक पर आश्रित हैं। चालक जैसे भी वाहन चलाएगा, उसका परिणाम तो सेठजी को भुगतना ही पड़ेगा। यदि वह सुरक्षित तरह से अच्छी गति से वाहन चलाता है तो सेठजी अपने गन्तव्य पर जल्दी और सुरक्षित पहुँचेंगे। यदि चालक असावधानी से वाहन चलाकर दुर्घटना कर देता है तो स्वाभाविक है कि सेठजी को भी चोट लग जाएगी। उसी तरह से जीवात्मा आपका स्वामी है और मन वाहन का चालक है जो पञ्चेन्द्रियों के सहारे उसे चला रहा है। यहाँ भी जीवात्मा अपने चालक अर्थात् मन पर आश्रित है। जब मन आत्मा के साथ जुड़ा है तो उसके कर्मों को आत्मा को भोगना ही पड़ेगा।

यह आत्मा की बाध्यता है कि जो भी शरीर कर रहा है, वही सभी कुछ आत्मा को भी करना ही पड़ेगा। दोनों के बीच पति-पत्नी का नाता है। पत्नी को साड़ी खरीदने के लिए साड़ी की दुकान पर जाना है, लेकिन पति की इसमे कोई रुचि नहीं है परन्तु पतिधर्म निभाने के लिए उसे भी साड़ी की दुकान पर जाना ही पड़ेगा। दुकान पर पत्नी साड़ियों का चयन करेगी और पति अरुचि दिखाते हुए दुकान के बाहर आने-जाने वाले लोगों और वाहनों को देखता रहेगा। बीच-बीच में जब पत्नी पूछेगी कि साड़ी कैसी है? पति सिर हिलाकर हाँ कह देगा लेकिन पत्नी कहेगी कुछ जम नहीं रहीं और वह दूसरी साड़ी चयन करने में लग जाएगी और पति पूर्ववत् बाहर देखने लग जाएगा।

दुकान से आने पर पत्नी ने घर में करेले की सब्जी बनाई है। पति को खिलाकर वह पूछती है कैसी है? पसन्द आए या न आए पति को कहना ही पड़ता है, क्या स्वाद है तुम्हारे हाथों में! इसी तरह पति को सिनेमा देखने में रुचि है। वह पत्नी से सिनेमाघर साथ जाकर सिनेमा देखने का अनुरोध करेगा। पत्नी को सिनेमा में रुचि नहीं है। वह कहती है घर पर टीवी में ही अच्छे कार्यक्रम आते हैं लेकिन पति के साथ सिनेमाघर जाना उसकी बाध्यता है। सिनेमाघर में पति सिनेमा का आनन्द लेता रहेगा और पत्नी अरुचि से बैठे-बैठे मोबाइल देखती रहेगी। यह सम्बन्ध है ही ऐसा। एक दूसरे के साथ जुड़ने पर साथ रहने और जाने की बाध्यता है। मन और आत्मा के बीच भी ऐसी ही बाध्यता है।

आत्मा को मन से जुड़ा होने पर, उसके सारे भोग भोगने ही पड़ते हैं। यह सब जानने के लिए विवेक की आवश्कता होती है, जिसे श्रीभगवान जी ने दसवें और ग्यारहवें श्लोक में बताया है।

15.10, 15.11

उत्क्रामन्तं(म्) स्थितं(वँ) वापि, भुञ्जानं(वँ) वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति, पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥15.10॥

यतन्तो योगिनश्चैनं(म्), पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो,नैनं(म्) पश्यन्त्यचेतसः।।11।।

शरीर को छोड़कर जाते हुए या दूसरे शरीर में स्थित हुए अथवा विषयों को भोगते हुए भी गुणों से युक्त (जीवात्मा के स्वरूप) को मूढ़ मनुष्य नहीं जानते, ज्ञानरूपी नेत्रोंवाले (ज्ञानी मनुष्य ही) जानते हैं
यत्न करने वाले योगी लोग अपने आप में स्थित इस परमात्म तत्त्व का अनुभव करते हैं। परन्तु जिन्होंने अपना अन्तःकरण शुद्ध नहीं किया है, (ऐसे) अविवेकी मनुष्य यत्न करने पर भी इस तत्त्व का अनुभव नहीं करते।

विवेचन- जब आत्मा शरीर को छोड़ कर दूसरे शरीर में प्रविष्ट करती है, तब आत्मा पूर्व शरीर के मन के गुणों को भोगती है। अज्ञानी व्यक्ति इसे नहीं जान सकता है इसीलिए तो भगवानजी ने अन्तिम श्लोक में कहा है-

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयाऽनघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत॥ 15:20॥

इसे खुले नैत्रों से नहीं देखा जा सकता है। इसे तो ज्ञान के चक्षु से देखना सम्भव है। ज्ञान रूपी चक्षुवाले ज्ञानी लोग इसे देख सकते हैं।

ग्यारहवें श्लोक मे श्रीभगवान जी कह रहे हैं-

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।

यत्न का अर्थ तो आप जानते ही हैं, प्रयत्न। प्रयास करने वाले योगी पुरुष ही आत्मा में निवास करने वाले इस परमतत्त्व को देख सकते हैं। जिन्होने अपना अन्तःकरण शुद्ध नहीं किया है, जिनमें अचेतना है, अर्थात् जो अविवेकशील हैं, वे इसे नहीं देख सकते हैं।

कई बार ऐसा घटता है कि बच्चा कक्षा में बैठा है लेकिन उसका मन कहीं ओर है। उसकी देह भले ही कक्षा में है, लेकिन चेतना अन्यत्र है। वह कक्षा में पढ़ाए जाने वाले विषय को नहीं समझ सकता है। शिक्षक ने कक्षा में कुछ पढ़ाया तब एक बच्चा खिड़की के बाहर देख रहा था। शिक्षक ने उसी बच्चे से प्रश्न किया- बताओ मैने क्या पढ़ाया? बच्चा जवाब नहीं दे पाया क्योंकि उसका ध्यान कक्षा में था ही नहीं। ऐसे लोग जो शुद्ध अन्तःकरण वाले नही हैं और जिन्हें परमतत्त्व को जानने में रुचि नहीं है, वे इसे नहीं जान सकते हैं।

योगीजन इस आत्मतत्त्व को जान लेते हैं। योगी का क्या अर्थ है? योगी बना है योग शब्द से, जो युज् धातु से आया है। इसका तात्पर्य जोड़ना या summation है। यहाँ क्या जोड़ना है? यहाँ मन के साथ बुद्धि और फिर शरीर को भी जोड़ना है, फिर उससे आत्मा को जोड़ना है। इस क्रिया को योग कहते हैं। योगीजन अपने मन और बुद्धि को एक साथ, एक दिशा में चलाते हैं।

बारहवें अध्याय में हमने इस बात को समझा है।

मय्यर्पितमनोबुद्धिः मामेवैष्यस्यसंशयम्॥ 8:7॥

श्रीभगवानजी कहते हैं कि इस घटना को जानने के लिए मन और बुद्धि को एक साथ, एक दिशा में चलाया जाना आवश्यक है। केवल बुद्धि या केवल मन के चलने से इसे जानना सम्भव नहीं है। यदि इस घटना को साकार करना है तो मन और बुद्धि को साथ चलाना होगा। हम पूजा करने के लिए भगवान के सामने बैठते हैं और अपना मोबाइल पास मे रख देते हैं। जैसे ही हम भगवान की प्रार्थना करना आरम्भ करते हैं, मोबाइल बज उठता है और हमारा ध्यान उस ओर आकृष्ट हो जाता है। हम बैठें तो भगवान के पास हैं लेकिन हमारा मन तो मोबाइल में अटका है। ऐसे ईश आराधना सम्भव नहीं है। ऐसे योगी लोग, जिन्होंने मन और आत्मा को साथ में जोड़ा है, वह आत्म स्वरूप को जान लेंगे। अज्ञानी लोग तो इसे जानने का प्रयास भी नहीं करेंगे। यह आत्मस्वरूप है, यह क्या करता है? इस बारे में भगवानजी आगे कहते हैं।

15.12

यदादित्यगतं(न्) तेजो, जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ,तत्तेजो विद्धि मामकम्।।12।।

सूर्य को प्राप्त हुआ जो तेज सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है (और) जो तेज चन्द्रमा में है तथा जो तेज अग्नि में है, उस तेज को मेरा ही जान।

विवेचन- यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण श्लोक है। इसे जिसने समझ लिया उसने वेदों को जान लिया है इसलिए तो श्रीभगवान जी ने अन्तिम श्लोक में कहा है-

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।

जिसने इसे समझ लिया वह कृत्कृत्य हो जाएगा। क्या समझना जरूरी है? भगवानजी कह रहे हैं-

यदादित्यगतं तेजो ।

आदित्य शब्द आप जानते हैं। एक-एक शब्द का सन्धि विच्छेद करेंगे तो इसका अर्थ समझ में आ जाएगा। संसार को प्रकाशित करने वाले सूर्य को जो तेज प्राप्त हुआ है, उससे हमारी नवग्रह तेज माला प्रकाशित हो जाती है और चन्द्र को भी जो प्रकाशित करता है। चन्द्र का स्वयं अपना प्रकाश नहीं होता। सूर्य का जो प्रकाश चन्द्र पर पड़ता है वह परावर्तित होकर हमारे यहाँ आता है और उससे चन्द्रमा के प्रकाशित होने का भान होता है। हमें जो दिखता है, वह सूर्य का प्रकाश है। चन्द्रमा का प्रकाश नहीं है।

सूर्य चन्द्र को प्रकाश देता है और अग्नि में जो तेज है, उसको तू मेरा ही जान। सूर्य चन्द्रमा को प्रकाशित कर रहा है और भगवान सूर्य को प्रकाशित कर रहे हैं। इस तरह असङ्ख्य तारामण्डल, सौर मण्डल और आकाश गङ्गाएँ प्रकाशित हो रही हैं। जिस तरह सूर्य हमारे लिए ऊर्जा का स्त्रोत है, उसी तरह पूरे ब्रह्माण्ड के लिए ऊर्जा का स्त्रोत परमात्मा हैं। जो कुछ हमें दिखाई देता है, उसका स्त्रोत वह नहीं होता जो हमें दिखाई देता है, बस उनका केवल नाम होता है। मैने एक घड़ी पहनी है, उसे एचएमटी ने बनाई या राडो ने बनाई तो क्या वह घड़ी राडो की हो गई। हमारे घरों मे हम जो नमक उपयोग करते हैं, उसे कहते हैं टाटा का नमक । क्या वह टाटा का नमक है? क्या उसे टाटा ने बनाया है? टाटा ने तो केवल नमक बनाने की प्रक्रिया बनाई है। नमक तो प्रकृति का एक स्वरूप है जो पानी में अवशोषित है। टाटा ने स्वयं नमक नहीं बनाया, केवल उसकी योजना को बनाया है, इसलिए उनका नाम जुड़ गया है। इस प्रक्रिया में कर्मचारियों की पूरी एक श्रृङ्खला बनी हुई है फिर भी हम इसे टाटा का नमक कहते हैं। इसी तरह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का मूलस्वरूप परमात्मा ही है।

15.13

गामाविश्य च भूतानि, धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः(स्) सर्वाः(स्), सोमो भूत्वा रसात्मकः।।13।।

मैं ही पृथ्वी में प्रविष्ट होकर अपनी शक्ति से समस्त प्राणियों को धारण करता हूँ और (मैं ही) रस स्वरूप चन्द्रमा होकर समस्त ओषधियों (वनस्पतियों) को पुष्ट करता हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान जी कहते हैं- मैं ही अपनी शक्ति से पृथ्वी में प्रविष्ट होकर सम्पूर्ण भूतमात्र को धारण करता हूँ। यहाँ भूत का अर्थ प्रेत नहीं बल्कि समस्त प्राणी मात्र हैं। भगवान समस्त भूतों को धारण करते है। चन्द्र स्वरूप रस के माध्यम से सभी औषधियों अर्थात् वनस्पतियों को पुष्ट करते हैं। वे कहते हैं कि संसार की सारी क्रिया-प्रक्रियाओं को चलाने वाला भी मैं ही हूँ। जो इस पिण्ड में है, वहीं ब्रह्माण्ड में है और जो इस ब्रह्माण्ड में है वही पिण्ड स्वरूप इस शरीर में विद्यमान है।

सोम अर्थात चन्द्र हमारे मन को चलाता है। आदित्य अर्थात सूर्य हमारे मस्तिष्क को चलाता है। बुद्धि को तेज प्रदान करता है। हमारे मस्तिष्क की नासिकाएँ सूर्य नाड़ी हैं और सूर्य नाड़ी द्वारा सञ्चालित होती हैं। बहुत अद्‌भुत शब्द है, हमारी दाहिनी नासिका को सूर्य नाड़ी और बायीं नासिका को चन्द्र नाड़ी कहा जाता है। यह शब्द आए कहाँ से? हम केवल आक्सीजन के बल पर ही जीवित नहीं रहते। यदि ऐसा होता तो मानव कभी मरता ही नहीं। आक्सीजन नली लगाकर या वेण्टिलेटर के माध्यम से उसे हमेशा के लिए जीवित रखा जा सकता था, लेकिन ऐसा नहीं है। वास्तव में हमें जीवित रखने वाली प्राणशक्ति होती है। वही प्राण बनकर बाहर निकलती है। हमने इस बारे में बहुत प्रयोग किए हैं।

हमने अपने विद्यालय में मोटे बच्चों पर प्रयोग किए। ग्यारहवीं कक्षा में प्रवेश लेने वाले एक बच्चे का वजन एक सौ आठ

किलोग्राम था। हमने उसके पिताजी से जब बात की तो उन्होने बताया कि इसे नीट की परीक्षा देकर चिकित्सक बनाना है। हमने कहा चिकित्सक तो बाद में बनाएँगे, इसे पहले नीट बनाना है। मराठी में नीट का अर्थ अच्छा या फिट होता है। उसका बॉडी मॉस इण्डेक्स मोटापे की सीमा से भी ऊपर चला गया था। हमारे यहाँ बीस प्रतिशत बच्चे मोटापे से पीड़ित हैं। इसका कारण उनका आहार-विहार है, जो उचित नहीं है। इस तरह के बच्चे दिनभर पिज्ज़ा बर्गर और मेगी खाते हैं और व्यायाम नहीं करते और देर रात तक जागते रहते हैं। उनके आहार में प्रोटीन और फाइबर्स होता नहीं बल्कि कार्बोहाइड्रेट की प्रचुरता होती है। उनका मेधा बढ़ने से उनका आलस्य भी बढ़ता जा रहा है। इनकी चयापचय क्रिया मन्द पड़ जाती है। इनकी अन्न पचाने की प्रक्रिया धीमी पड़ जाती है।

ऐसे बच्चों पर हमने एक प्रयोग किया। यह एक अद्भुत प्रयोग है। मोटापे से पीड़ित लोगों को इसे ध्यान से सुनना चाहिए। सुबह, दोपहर और रात के प्रत्येक भोजन से पूर्व उनकी बायीं नासिका को बन्द कर सूर्य नाड़ी को खुला रखकर अट्ठाईस-अट्ठाईस बार गहरी साँस लेकर धीरे-धीरे छोड़ने को कहा। मात्र इतना ही करना है। ऐसा करने से हमारे अन्दर की ऊष्मा बढ़ने लगती है। हमारी दाहिनी नासिका की सूर्य नाड़ी ऊष्मा बढा़ने का काम करती है। इससे चयापचय क्रिया तेज हो गई और जो भी खाया फटाफट बाहर निकल गया। जो लोग खाना खाने के साथ फ्रिज का ठण्डा पानी पीते हैं, वे तो और भी हानि करते हैं। जैसे गर्म तवे पर पानी छिड़क दिया जाए तो उसमें छेद हो सकते हैं, यह प्रभाव भी ऐसा ही है। हमारे अन्दर जठराग्नि पैदा हुई और उस पर ठण्डा पानी डालकर, उसे ठण्डा कर दिया। अभी ग्रीष्म ऋतु आरम्भ हुई है। कई लोगों को खाने के साथ फ्रिज का ठण्डा पानी पीने की आदत है। यह आदत बहुत गलत है। इसे तुरन्त बन्द कर देना चाहिए। विशेष रूप से भोजन के साथ मटके या कमरे के तापमान के पानी का सेवन करना चाहिए, अन्यथा आपके शरीर में भोजन पचाने के लिए पैदा हुई ऊष्मा, भोजन पचाने वाले रसों का स्त्राव आरम्भ होते ही, श्वसन से निर्मित ऊर्जा पर फ्रिज का पानी गरम तवे पर ठण्डे पानी छिड़कने जैसा है। ठण्डा पानी आपके भोजन को पचानें में बाधक बन जाता है और कई रोगों को जन्म देता है। जिनका वजन बढ़ता नहीं, उनको विपरित क्रिया करनी चाहिए। उनको भोजन ज्यादा देर तक पेट में रखना होगा। इसके लिए दायीं नासिका बन्द कर बायीं नासिका से अट्ठाइस बार दीर्घ श्वसन करना चाहिए। बडा अद्भुत शास्त्र है, जिसका विवेचन करने का समय नहीं है लेकिन हमारा दाहिना मस्तिष्क हमारे बायें शरीर को तथा बायाँ मस्तिष्क दाहिने शरीर को नियन्त्रित करता है। हम अपनी नासिका के नीचे हाथ रखकर देखें कौनसी नासिका से ज्यादा साँस आ रही है? यदि दाहिनी नासिका से श्वास तेज आ रही है तो हमारा बायाँ मस्तिष्क क्रियाशील है। यदि बायीं नासिका से तेज श्वसन हो रहा है तो दायाँ मस्तिष्क क्रियाशील है।

हमारा दाहिना मस्तिष्क, सृजनशीलता, भाषा, कला, साहित्य जैसी विधाओे को सञ्चालित करता है। बायाँ मस्तिष्क विश्लेशणात्मक क्रियाओं, गणित आदि को नियन्त्रित करता है। यदि किसी बालक का चन्द्र स्वर तेज चल रहा हो और उसे गणित करने को दिया जाए तो उसके लिए आसान नहीं होगा। कई बार ऐसा होता है जब बच्चे का बायाँ स्वर तेज चल रहा हो और उसका दाहिना मस्तिष्क क्रियाशील हो और उसे गणित पढ़ाया जा रहा हो तो वह अपनी नोट बुक के अन्तिम पृष्ठ पर चित्र बना रहा होता है क्योंकि तब उसका दायाँ मस्तिष्क क्रियाशील होगा। इसमे बच्चे का दोष नहीं है।

हमने इस पर भी प्रयोग किए। दोनों नासिका खोल दी। सूर्य नाड़ी और चन्द्र नाड़ी समान वेग से चलने लगीं। **इसे सुषुम्ना नाड़ी का चलना कहते हैं, जिसमें सूर्य तथा चन्द्र नाड़ी के बीच समन्वय और सन्तुलन होता है।** विद्या अध्ययन से पूर्व दोनों नाड़ियाँ खोल दी जाती हैं। प्राणायाम से यह सम्भव है इसलिए हमारे यहाँ सन्ध्या वन्दन की परम्परा है। इससे दोनों मस्तिष्क एक साथ चलने लगते हैं। ब्रह्माण्ड में जो पृथ्वी, आकाश, जल, वायु और अग्नि तत्त्व हैं, वे सभी हमारे शरीर मे हैं। जो पिण्ड में हैं, वही सब ब्रह्माण्ड में और जो ब्रह्याण्ड में हैं, वही पिण्ड में हैं और हमारा शरीर पञ्चभूतों से मिलकर बना है।

15.14

अहं(वँ) वैश्वानरो भूत्वा, प्राणिनां(न्) देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः(फ्), पचाम्यन्नं(ञ्) चतुर्विधम्॥15.14॥

प्राणियों के शरीर में रहने वाला मैं प्राण-अपान से युक्त वैश्वानर (जठराग्नि) होकर चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ।

विवेचन- श्रीभगवानजी कह रहे हैं चतुर्विधम्। यह चार विधाएँ क्या हैं? हम चार विधाओं के साथ भोजन करते हैं। हमने सोचा

भी नहीं होगा, जिसे श्रीभगवान जी ने हजारों वर्ष पहले बता दिया था।

भोजन करने के चार तरीके होते हैं-

चावल, रोटी को चबाकर खाया जाता है।
दूध, छाछ को पीया जाता है।
गन्ने आदि को चूस कर खाया जाता है ।
मधु अर्थात् शहद और चटनी का स्वाद चाट कर लिया जाता है।

प्राणियो के शरीर में रहने वाली प्राण और अपान वायु से समान रूप से युक्त होकर जठर के अन्दर प्रदीप्त अग्नि को जठराग्नि कहते हैं।

अग्नि भी कई तरह की होती हैं। इस पर भी हमारे यहाँ कई खोज हुईं और हमारे ऋषि मुनियों ने अनेक प्रकार की अग्नियों को खोज निकाला है। यद्यपि सभी प्रकार की अग्नियाँ जलाने का काम ही करती हैं किन्तु सभी अलग-अलग प्रकार की होती हैं। इसमें जो जठराग्नि होती है वह वैश्वानर अग्नि कहलाती है।

वृकोदर नामक भी एक अग्नि होती है। हम तीसरे स्तर में पहला अध्याय पढ़ेंगे तब इस बारे में जानेंगे। उसमें कहा गया है कि युद्धारम्भ होने से पूर्व सभी योद्धओं ने अलग-अलग तरह के शङ्ख फूँके थे, जिसमें भीम ने महाशङ्ख बजाकर वृकोदर का नाम पाया था। यह वृकोदर एक अग्नि है, जो पेट में रहती है। वृकोदर अग्नि वाले कितना भी खा लें, कुछ भी खा लें, सब कुछ पचा सकते हैं। कुछ ही लोगों में यह अग्नि होती है। प्राण और अपान से निर्मित अग्नि को वैश्वानर अग्नि कहा गया है। यह चारों प्रकार के भोजन को पचा लेती है। भगवानजी कहते है, यह सब मैं ही हूँ, लेकिन सभी को अलग-अलग रूप में दिखाई देता हूँ।

जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिनि तैसी- बालकाण्ड

अभी अयोध्या में भगवान श्रीराम की प्रतिमा की प्राण प्रतिष्ठा हुई। वहाँ पाँच वर्ष के बालक श्रीराम की प्रतिमा स्थापित की जानी थी। इसके लिए तीन अलग-अलग कलाकारों को बाल राम की मूर्ति बनाने का दायित्व सौंपा गया था। उन्होने अपनी-अपनी कल्पना से बालक राम की प्रतिकृति देखकर मूर्ति बनाई और जिसकी मूर्ति सबसे अच्छी घोषित हुई, उसकी मूर्ति की अयोध्या में प्राण प्रतिष्ठा की गई। प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी कल्पनाओे से मुझे देखते हैं।

आकाश का गुण शब्द है, जो हवा से आता है। हम जो भी कान से सुनते हैं, उन शब्दों और कानों के बीच एक अवकाश होता है। अवकाश से ही शब्द सुनाई देते है, लेकिन हमारे कानों को अलग-अलग तरह के शब्द सुनाई देते हैं। वाद्य यन्त्रों को ही ले लीजिए, तबले की आवाज अलग है, सितार की आवाज अलग है। हारमोनियम की आवाज भिन्न है। शब्द अलग-अलग और भिन्न प्रकार के हैं। सूर्य का गुण प्रकाश है, किन्तु वह भी अलग-अलग प्रकार का होता है। उसके काम भी कई तरह के होते हैं। उसी प्रकाश से सौर ऊर्जा भी तैयार होती है और एक्सरे भी निकाले जा सकते हैं, जो हमारे शरीर के आन्तरिक हिस्सों के चित्र प्रदान करते हैं। वह भी प्रकाश पर आधारित है। उसी प्रकार से भगवान भी अलग-अलग प्रकार के रूपों में दिखाई देते हैं, जो हमारी चार प्रकार की भोजन प्रणाली को चलाते हैं।

15.15

सर्वस्य चाहं(म्) हृदि सन्निविष्टो, मत्तः(स्) स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं(ञ्) च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो, वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।।15।।

मैं ही सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ तथा मुझसे (ही) स्मृति, ज्ञान और अपोहन (संशय आदि दोषों का नाश) होता है। सम्पूर्ण वेदों के द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ। वेदों के तत्त्व का निर्णय करने वाला और वेदों को जानने वाला भी मैं (ही हूँ)।

विवेचन- श्रीभगवानजी कहते हैं-

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो .....।

यह श्लोक जब बच्चों को पढ़ाया तो वे कहने लगे, हमें इसका अर्थ ज्ञात है। उनके अर्थ भी बड़े रोचक थे। उन्होने कहा, सभी को चाय की चाह होती है। स्टोव पर बनाई गई चाय सब पसन्द करते हैं। यदि चाय के साथ पोहा मिल जाए तो क्या बात है! परन्तु यह ऐसा नहीं है, यह उनकी कल्पना है, जबकि इसका बड़ा सुन्दर अर्थ है।

भगवान जी कहते हैं, मैं ही समस्त प्राणियों के हृदय में रहता हूँ। स्मृति ज्ञान और संशय आदि दोषों का नाश मुझ से ही होता है। सम्पूर्ण वेदों के द्वारा मैं ही जानने के योग्य हूँ। वेदों के तत्त्वों का निर्णय करने वाला और वेदों को जानने वाला भी मैं ही हूँ। मैं ही वेदों का निर्माण कर रहा हूँ, मैं ही वेदों को जान रहा हूँ, मैं ही वेदवित् हूँ। वास्तव में उन्हीं वेदों के माध्यम से तुम मेरा स्वरूप जान पाओगे लेकिन मैं सबके हृदय में निवास करता हूँ। यह भाव पुष्ट होना चाहिए कि भगवान सर्वत्र विद्यमान हैं। सभी भूतों में विद्यमान हैं।

इसलिए गीता प्रेस में प्रतिदिन जो प्रार्थना की जाती है वह बड़ी सुन्दर प्रार्थना है।

तू ही है सर्वत्र व्याप्त हरि ! तुझमें यह सारा संसार ।
इसी भावना से अन्तर भर, मिलूँ सभी से तुझे निहार ।।

अब मुझे जो भी मिलेगा, तेरा ही स्वरूप जानूँगा। इसलिए हमारे यहाँ यह परिपाटी बनाई गई है कि जब हम किसी से मिलते हैं, तब जय श्रीराम और जय श्रीकृष्ण कहते हैं। जो राम और कृष्ण आपके अन्दर हैं, वही हमारे अन्दर भी हैं इसलिए जब हम जय श्रीराम और जय श्रीकृष्ण कहते हैं तो उनके साथ-साथ अपने भगवान की भी जय-जयकार कर लेते हैं। जब इस तरह के शुद्ध विचार मिल जाएँ तो क्षुद्र और बुरे विचारों की पराजय हो जाए।

हमारे ऋषि मुनियों ने मानस पूजा में बहुत सुन्दर भाव उतार दिए हैं।

आत्मा ....।

मैं सुबह से लेकर सन्ध्याकाल तक जो भी काम कर रहा हूँ, वह तेरी पूजा बन जाना चाहिए। मेरा सञ्चार तेरी प्रदक्षिणा बन जाए। मेरी निद्रा तेरी समाधि बन जाए और मेरे शब्द तेरे स्तोत बन जाएँ।

यत् यत् कर्म .....।

मेरे शरीर, मेरे मन में जो भी कुछ घट रहा है, वह बस तेरी पूजा बन जाए। तेरी आराधना बन जाए, यह भाव पुष्ट हो जाए।

श्रीकृष्ण कहना सीखिए।
जय श्रीराम कहना सीखिए।

Good morning और good night हमारी संस्कृति का अंश नहीं हैं। हम इन छोटी-छोटी बातों को जीवन में उतार कर आगे बढ़ सकते हैं। हमारे हर काम में उसी की पूजा चल रही है, बस ऐसा ही भाव मन में लाएँ। ऐसे ही विचार हमारे मन में रहना आवश्यक है।

15.16

द्वाविमौ पुरुषौ लोके, क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः(स्) सर्वाणि भूतानि, कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।16।।

इस संसार में क्षर (नाशवान्) और अक्षर (अविनाशी) – ये दो प्रकार के ही पुरुष हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर क्षर और जीवात्मा अक्षर कहा जाता है।

विवेचन- श्रीभगवानजी कहते हैं-

द्वादिमौ पुरुषो लोके......।

संसार में दो प्रकार के पुरुष हैं। यहाँ पुरुष का तात्पर्य केवल नर से नहीं है। स्त्री-पुरुष सभी इसमें सम्मिलित हैं। यह दो प्रकार के पुरुष क्षर एवम् अक्षर अर्थात् नाशवान और अनाशवान हैं। हम सभी नाशवान शरीर वाले लोग हैं। हमारा शरीर एक न एक दिन मिट्टी में मिल जाएगा, अग्नि को समर्पित कर दिया जाएगा इसलिए हम सारे क्षर लोग हैं और कुछ पुरुष ऐसे हैं जो अक्षर हैं, जिनका क्षर नहीं होता। संसार में नाशवान और अविनाशी दो ही तरह के पुरुष हैं। हमारे अन्दर जो जीवात्मा है, वह अक्षर है, उसका नाश नहीं हो सकता।

ऊर्जा का यह सिद्धान्त है कि ऊर्जा अविनाशी है, यह कभी समाप्त नहीं होती, केवल इसका रूप बदलता है। जब हवा चली तो उसके साथ ऊर्जा भी चली। जब उस हवा को पवन चक्की में डाल दिया तो उससे विद्युत निर्मित हुई और पवन चक्की चलने लगी। बहती हवा या बहते पानी में जो ऊर्जा थी, उसे विद्युत में परिवर्तित कर लिया। उसी प्रकार हमारे अन्दर जो आत्मा है, वह अविनाशी है। वह एक शरीर से दूसरे शरीर में चली जाएगी। उसका नाश कभी नहीं होगा। यह जो आत्मा है, वह अक्षर पुरुष है। जो देह है, वह क्षर पुरुष है। इस बात को समझना आवश्यक है, लेकिन इनसे भी ऊपर एक और है, वह सत्रहवें श्लोक में बताया गया।

15.17

उत्तमः(फ्) पुरुषस्त्वन्यः(फ्), परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य, बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।।17।।

उत्तम पुरुष तो अन्य (विलक्षण) ही है, जो 'परमात्मा'– इस नाम से कहा गया है। (वही) अविनाशी ईश्वर तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर (सबका) भरण-पोषण करता है।

विवेचन- **उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः.......।** उत्तम पुरुष तो अन्य ही है। जिस परमात्मा को यहाँ उद्धृत किया गया है, वह अविनाशी है। यह अक्षर पुरुष अर्थात् ईश्वर तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर, समूचे जगत का भरण-पोषण करता है। यह अत्यधिक अद्भुत श्लोक है।

श्रीभगवानजी कहते हैं, पञ्चभूतों से बना हमारा शरीर नाशवान है। आत्मा अविनाशी है, लेकिन इस क्षर शरीर और इस अक्षर आत्मा से निर्मित पुरुष को जो अधिसत्ता चलाती है, वह अधिसत्ता पुरुषोत्तम है। इस अध्याय में यहाँ पर पुरुषोत्तम की व्याख्या हुई, कि जो नियन्ता इस सृष्टि को चला रहा है, वही पुरुषोत्तम है।

15.18

यस्मात्क्षरमतीतोऽहम्, अक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च, प्रथितः(फ्) पुरुषोत्तमः।।18।।

कारण कि मैं क्षर से अतीत हूँ और अक्षर से भी उत्तम हूँ, इसलिये लोक में और वेद में 'पुरुषोत्तम' (नाम से) प्रसिद्ध हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान जी कहते हैं- जो स्वयं को प्रकाशित करता है, जो अविनाशी है, जो क्षय और अक्षय से परे है, जो सर्वोत्तम है, उसे वेद और ज्ञानी लोग पुरुषोत्तम के रूप में जानते हैं। वह पुरुषोत्तम, भगवत्स्वरूप कृष्ण के मुँह से बोलने वाली अधिसत्ता मैं हूँ, जो क्षर से भी अतीत हूँ और अक्षर से भी उत्तम हूँ, इसलिए लोक और वेद में पुरूषोत्तम के नाम से प्रसिद्ध हूँ।

15.19

यो मामेवमसम्मूढो, जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां(म्),सर्वभावेन भारत।।19।।

हे भरतवंशी अर्जुन ! इस प्रकार जो मोह रहित मनुष्य मुझे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ सब प्रकार से मेरा ही भजन करता है।

विवेचन- फिर भगवानजी कहते हैं- **यो मामेवसम्मूढो . ..।**
हे भारतवंशियों में सर्वश्रेष्ठ अर्जुन! जो इस प्रकार मोह रहित पुरुष है, वह पुरुषोत्तम को जानता है। एक बार उसे ईश्वर की अधिसत्ता का ज्ञान हो गया तो वह सर्वज्ञ बन जाता है, जो बुद्ध को उस बोधी वृक्ष के नीचे हुआ था।

अलग-अलग ऋषि-मुनियों को अपनी-अपनी गुफा में जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह ज्ञान उन्हे सर्वज्ञ बना देता है। एक बार समझ में आ जाए कि यह पुरुषोत्तम हैं और क्षर और अक्षर पुरुष को सञ्चालित करने वाली अधिसत्ता सर्वोपरि है, ऐसे ज्ञानी उस पुरुषोत्तम की शरण में ही जाते हैं, उसको ही भजने लगते हैं। वे ज्ञानी पुरुष इस भेद को जान लेते हैं, वे इस गुह्यतम शास्त्र को जान लेते हैं।

15.20

इति गुह्यतमं(म्) शास्त्रम्, इदमुक्तं(म्) मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्, कृतकृत्यश्च भारत।।20।।

हे निष्पाप अर्जुन ! इस प्रकार यह अत्यन्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया है। हे भरतवंशी अर्जुन ! इसको जानकर (मनुष्य) ज्ञानवान् (ज्ञात-ज्ञातव्य) (तथा प्राप्त-प्राप्तव्य) और कृतकृत्य हो जाता है

विवेचन-- श्रीभगवान जी इस गुह्यतम शास्त्र के बारे में कहते हैं- **इति गुह्यतम शास्त्रम्......।** हे निष्पाप अर्जुन, हे अनघ। अर्जुन के लिए भगवानजी ने अत्यधिक सुन्दर सम्बोधन का प्रयोग किया है। हे अनघ! यह जो गुह्यतम शास्त्र है, यह जो मैने कहा। हे भारत! हे भरतवंशियों में सर्वश्रेष्ठ अर्जुन! जो बुद्धिमान लोग इसे जानते हैं, ऐसे ज्ञानवान लोग कृत्कृत्य हो जाते हैं।

बड़ा सुन्दर अध्याय यहाँ पूर्ण हुआ परन्तु यहाँ रुक मत जाना। द्वितीय स्तर में तुरन्त प्रविष्ट होना है। अगले अध्यायों को जानने का प्रयास करना है। यह जीवन का शास्त्र है। यह विजय का शास्त्र है। यह समुपदेशन का सबसे बड़ा शास्त्र और विधा है। यह सर्वोत्तम ज्ञान देने वाला छोटा सा ग्रन्थ आपको विजय की ओर ले जाएगा। जीवन में विजय प्राप्त कराएगा, इसलिए आज यहाँ प्रथम स्तर के पन्द्रहवें अध्याय का समापन तो हो गया है परन्तु यहाँ से आरम्भ हुआ है, यदि आगे चलकर इसे जानेंगे तो निश्चित ही कृत्कत्य हो जाएँगे।

: : प्रश्नोत्तर : :

प्रश्नकर्ता- ममता दीदी
प्रश्न- मान अपमान और क्षमा को अपने भीतर कैसे धारण करें?
उत्तर- अक्सर बच्चे शिकायत करते हैं कि उसने मुझे चिढ़ाया। चिढ़ाया किसने यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। जीता कौन? यह महत्त्वपूर्ण है। चिढ़ाने पर यदि हम चिढ़ गये, तो चिढ़ानेवाला अपने उद्देश्य में सफल हो गया। चिढ़ाने पर भी यदि हम नहीं चिढ़ते तो सामने वाले का उद्देश्य विफल रहा और हम जीत गये। यह तभी सम्भव है, जब हम क्षमाशील बनें। बाद में जब वह और हम

दोनों शान्त हों, तब उसे समझाया जा सकता है। भ्रान्ति से ही मान या अपमान की अनुभूति होती है। भ्रान्ति का निवारण शान्त मन से ही किया जा सकता है, उद्विग्नता से नहीं हो सकता। मान-अपमान में शान्त रहने से समत्व भाव जाग्रत होता है। क्रोध नहीं करना, इसके लिए अभ्यास आवश्यक है। संयत रहना है।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः॥ 6:7॥

जब कोई उद्वेगकारी वाक्य कहे, स्वयं धीरे-धीरे दीर्घ श्वास लें, क्रोध कम होने लगेगा, मन संयत हो जाएगा। श्रीमद्भगवद्गीता के सूत्र से सफलता मिलती है।

जय श्रीकृष्ण।

श्रीकृष्ण की जय हो जाए!
क्रोध की पराजय हो जाए!!

तू ही है सर्वत्र व्याप्त हरि !
तुझमें यह सारा संसार ।
इसी भावना से अंतर भर,
मिलूँ सभी से तुझे निहार ।।

उसमें भी वही कृष्ण हैं, ऐसा मानकर मिलेंगे तो क्रोध और मान-अपमान का बोध नहीं आएगा।

प्रश्नकर्ता- ममता दीदी
प्रश्न- अश्वत्थ वृक्ष में हम अपनी स्थिति कहाँ समझें?
उत्तर- आप समत्व में रह रहे हैं, आप किस गुण में स्थित हैं? सत्त्वगुण, रजोगुण या तमोगुण में से प्रधानता किसकी है? तीनों गुण आवश्यक हैं। तमोगुण के अभाव में हम रात्रिशयन नहीं कर पाएँगे। हम स्वयं का विश्लेषण कर सकते हैं। तमोगुण होने पर स्थिति नीचे की ओर है। यदि रजोगुण है, तो हम मध्य में स्थित हैं। सत्त्वगुण प्रधान है, तो ऊपर ईश्वर की ओर बढ़ रहे हैं।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥ 12:8॥

प्रश्नकर्ता- विमल अरोड़ा दीदी
प्रश्न- कृपया तीन मिनट का पुन: ध्यान बतावें।
उत्तर- पूर्व में ध्यान नहीं, धारणा बताई गई थी। प्रेक्षा का अर्थ है अपने भीतर देखना। तीन मिनट आँखे बन्द करके क्रमानुसार प्रेक्षा करना है।

1- श्वास प्रेक्षा- पहले मिनट में अपने अन्दर जाती श्वास और बाहर आती श्वास को अनुभव करना है। गति में परिवर्तन नहीं करना है, सामान्य चल रही साँस को देखना है।

2- संवेदन प्रेक्षा- सिर पर शिखा से लेकर पैर के नाखून तक परीक्षण करते हुए नीचे उतरना है। सिर में, कपाल में क्या हो रहा है? माथे में क्या हो रहा है? आँखों में, कानों में, कन्धों में क्या-क्या घटित हो रहा है? हृदय में, भुजाओं में पेट में क्या-क्या संवेदनाएं हो रही हैं? पैरों के नाखून तक पहुँचना है।

3- विचार प्रेक्षा- मन में आते-जाते विचारों को देखते रहना है। मन के विचारों में लिप्त नहीं होना है। लिप्त हो जाने पर विचार

रुकेंगे नहीं, अपितु बढ़ते चले जाएँगे।

तीन मिनट तक श्वास, संवेदना और विचार को देखना है। क्रिया प्रतिक्रिया नहीं करनी है। खुजली आए, तो खुजाना नहीं है, केवल देखना है कि खुजली आ रही है। स्वयं के भीतर उतरकर देखना मात्र है, उसमें प्रतिभागी नहीं बनना है। विक्षिप्त मन बन्दर जैसा है, इसे रोकने हेतु कुछ सप्ताह प्रयास करने पर, सरल होने लगता है। आरम्भ में तीन मिनट तक करना भी कठिन है। अभ्यास होने पर तीन मिनट की अवधि को बढ़ा सकते हैं।

प्रश्नकर्ता- अर्चना अनिल सोहोनी दीदी
प्रश्न- सुख-दुःख के द्वन्द्व में सम कैसे रहें?
उत्तर- सुख और दुःख में समान रहना चाहिए। यह बोलने में तो आसान लगता है, कर पाना बड़ा कठिन है। सुख तो सहन कर लेते हैं, जब दुःख आता है, तो हम विषादग्रस्त हो जाते हैं। हम बार-बार दुःख को याद करते रहते हैं।

भगवान ने कहा है-

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥ 2:38॥

हमें समझना है कि सुख और दुःख दोनों घटनाएँ बाहर घट रही हैं। हमारे भीतर घटित नहीं हो रही हैं। हम इन्हें अपने भीतर प्रवेश की अनुमति देते हैं तो भी आकर यह द्वन्द्व उथल-पुथल पैदा करते हैं। हम लम्बे समय तक पीड़ित रहते हैं, धीरे-धीरे सामान्य हो जाते हैं। यह घटना बाहर घटी है, इसलिए कुछ समय के पश्चात् हमारी पीड़ा कम हो गयी। यदि यह भीतर घटित हुआ होता तो पीड़ा कम नहीं होती।

हम सुख दुःख के द्वन्द्वों को अपने भीतर आने की अनुमति नहीं दें, तो यह बाहर से ही लौट जाएँगे। सुख का भीतर प्रवेश वर्जित और दुःख का प्रवेश भी निषेध करने से अन्दर आनन्द की धारा बहती रहेगी।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'पुरूषोत्तमयोग' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||